शहादते-हक़

सैयद अबुल-आला मौदूदी
अनुवाद
नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, बहुत रहमवाला है।'

मुसलमानों की ज़िम्मेदारी और उनकी ज़िन्दगी का मक़सद

मुल्क की तक़सीम से पहले यह तक़रीर मौलाना ने 30 दिसम्बर 1946 ई॰ को जमाअते-इस्लामी के इजतिमा के अवसर पर मुरादपुर (सियालकोट) मक़ाम पर एक आम सभा में की थी। उसको यहाँ मुख़्तसर करके पेश किया गया है।

सारी तारीफ़ें उस ख़ुदा के लिए हैं, जो कायनात का अकेला पैदा करनेवाला मालिक और हाकिम है, जो बड़ी ही हिकमत, क़ुदरत और रहमत के साथ इसमें राज कर रहा है। जिसने इनसान को पैदा किया, उसको इल्म और अक़्ल की क़ुव्वतें और सलाहियतें दीं। उसे ज़मीन में अपनी ख़िलाफ़त दी और उसकी रहनुमाई के लिए किताबें उतारीं और पैग़म्बर भेजे। फिर ख़ुदा की अनगिनत रहमतें हों उसके उन नेक और प्यारे बन्दों पर, जो इनसान को इनसानियत सिखाने आए, जिन्होंने आदमी को उसकी ज़िन्दगी का मक़सद बताया और उसे दुनिया में जीने का सही तरीक़ा सिखाया। आज दुनिया में हक़ की रौशनी, अख़लाक़ की पाकीज़गी, भले काम और परहेज़गारी, जो कुछ भी पाई जाती है वह सब ख़ुदा के उन्हीं नेक बन्दों की तालीम और शिक्षाओं का फल है और इनसान कभी उनके एहसानों का बदला नहीं चुका सकता।

प्यारे भाइयो! हम अपने इजतिमाआत (सम्मेलनों) को दो हिस्सों में तक़सीम किया करते हैं। एक हिस्सा इस मक़सद के लिए होता है कि हम ख़ुद आपस में बैठकर अपने काम का जाइज़ा लें और उसे आगे बढ़ाने के लिए आपस में मश्वरा करें। दूसरा हिस्सा इस मक़सद के लिए ख़ास होता

है कि जिस जगह पर हमारा इजतिमा हो रहा है वहाँ के अवाम के सामने हम अपनी दावत और पैग़ाम को पेश करें। इस वक़्त यह इजतिमा इसी दूसरे मक़सद के लिए है। हमने आपको इसलिए तक्लीफ़ दी है कि आपको बताएँ कि हमारी दावत क्या है और किस चीज़ की तरफ़ हम बुलाते हैं।

हमारी दावत के मुख़ातब एक तो वे लोग हैं जो पहले से मुसलमान हैं। दूसरे ख़ुदा के वे बन्दे हैं जो मुसलमान नहीं हैं। इनमें से हर एक के लिए हमारे पास एक पैग़ाम है। मगर अफ़सोस है कि यहाँ दूसरे गरोह के लोग मुझे नज़र नहीं आते। यह हमारी पिछली ग़लतियों और आज की बे-तदबीरियों का नतीजा है कि ख़ुदा के बन्दों का एक बहुत बड़ा हिस्सा हमसे दूर हो गया है और मुश्किल ही से हम कभी यह मौक़ा पाते हैं कि उनको अपने पास बुलाकर या ख़ुद उनके पास जाकर वह पैग़ाम उनको सुनाएँ जो उनके और हमारे ख़ुदा ने हम सबको हक़ की राह दिखाने के लिए अपने पैग़म्बरों के ज़रिए भेजा है। बहरहाल अब जब कि वे मौजूद नहीं हैं, मैं दावत के सिर्फ़ उस हिस्से को पेश करूँगा जो मुसलमानों के लिए ख़ास है।

मुसलमानों को हम जिस चीज़ की तरफ़ बुलाते हैं वह यह है कि वे उन ज़िम्मेदारियों को समझें और अदा करें जो मुसलमान होने की हैसियत से उन पर वाजिब होती हैं। आप सिर्फ़ इतना कहकर नहीं छूट सकते कि हम मुसलमान हैं और हमने ख़ुदा को और उसके दीन को मान लिया है, बल्कि जब आपने ख़ुदा को अपना ख़ुदा और उसके दीन को अपना दीन माना है, तो उसके साथ कुछ ज़िम्मेदारियाँ भी आपपर आती हैं, जिनका इल्म आपको होना चाहिए और जिनके अदा करने की फ़िक्र आपको करनी चाहिए। अगर आप उन्हें अदा न करेंगे तो उसके वबाल से न दुनिया में छूट सकेंगे और न आख़िरत में। वे ज़िम्मेदारियाँ क्या हैं? वे सिर्फ़ यही नहीं हैं कि आप ख़ुदा पर, उसके फ़रिश्तों पर, उसकी किताबों पर, उसके रसूलों पर और आख़िरत के दिन पर ईमान लाएँ। वे सिर्फ़ इतनी भी नहीं हैं कि आप नमाज़ पढ़ें, रोज़ा रखें, हज करें और ज़कात दें। वे सिर्फ़ इतनी भी नहीं हैं कि आप निकाह, तलाक़, विरासत आदि मामलों में इस्लाम के तय किए हुए क़ानून पर अमल करें, बल्कि इन सबके साथ-साथ एक बड़ी और बहुत भारी ज़िम्मेदारी

आपपर यह वाजिब होती है कि आप सारी दुनिया के सामने उस हक़ के गवाह बनकर खड़े हों, जिसपर आप ईमान लाए हैं। 'मुसलमान' के नाम से आपको अलग तौर पर एक उम्मत (समुदाय) बनाने का एक ही मक़सद जो क़ुरआन में बयान किया गया है, वह यह है कि आप ख़ुदा के सारे ही बन्दों के सामने हक़ की गवाही दें, ताकि वे यह इलज़ाम न लगा सकें कि उन्हें हक़ से बे-ख़बर रखा गया। क़ुरआन में है—

"और इसी तरह हमने तुम्हें एक बेहतरीन गरोह बनाया, ताकि तुम लोगों पर (हक़ के) गवाह बनो और रसूल तुमपर (हक़ का) गवाह हो।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-145)

यह आपकी उम्मत को पैदा करने का अस्ल मक़सद है, अगर इसको आपने पूरा न किया तो समझिए कि आपने अपनी ज़िन्दगी ही बेकार गँवा दी। यह आपपर ख़ुदा की तरफ़ से डाला हुआ फ़र्ज़ है—

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! ख़ुदा के लिए उठनेवाले और ठीक-ठीक हक़ की गवाही देनेवाले बनो।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-6)

और यह निरा हुक्म ही नहीं बल्कि ताकीदी हुक्म है, क्योंकि अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"उस शख़्स से बढ़कर ज़ालिम और कौन होगा जिसके पास अल्लाह की तरफ़ से एक गवाही हो और वह उसे छिपाए।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-140)

फिर अल्लाह ने आपको यह भी बता दिया है कि इस फ़र्ज़ को पूरा न करने का नतीजा क्या है। आपसे पहले इस गवाही के कटघरे में यहूदी खड़े किए गए थे, मगर उन्होंने कुछ तो हक़ को छिपाया और कुछ हक़ के ख़िलाफ़ गवाही दी और इस तरह वे हक़ के नहीं, बल्कि बातिल के गवाह बनकर रह गए। नतीजा यह हुआ कि अल्लाह ने उन्हें धुतकार दिया और उनपर वह फिटकार पड़ी कि—

"...तो ज़िल्लत (अपमान एवं तिरस्कार) और गिरावट और

बदहाली उनपर डाल दी गई और वे अल्लाह के अज़ाब में घिर गए।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-61)

यह शहादत (गवाही) जिसकी ज़िम्मेदारी आपपर डाली गई है, इससे मुराद यह है कि जो हक़ आपके पास आया है, जो सच्चाई आपपर वाज़ेह की गई है, इनसान के लिए कामयाबी और नजात का एक ही रास्ता जो आपको दिखाया गया है, आप दुनिया के सामने इस बात की गवाही दें कि वही सीधा और सच्चा रास्ता है। यह गवाही ऐसी हो जो उसके हक़ (सत्य) होने को वाज़ेह कर दे और दुनिया के लोग यह दलील पेश न कर सकें कि हमें हक़ का पता ही नहीं था। इसी गवाही के लिए नबी (अलैहि॰) दुनिया में भेजे गए थे और यह गवाही देनी उनपर फ़र्ज़ थी। फिर यही गवाही तमाम नबियों के बाद उनके माननेवालों पर फ़र्ज़ होती रही और अब आख़िरी रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के बाद यह फ़र्ज़ मुसलमानों पर इजतिमाई (सामूहिक) तौर से उसी तरह फ़र्ज़ है, जिस तरह पैग़म्बर (सल्ल॰) पर उनकी ज़िन्दगी में निजी हैसियत से फ़र्ज़ था।

इस गवाही की अहमियत का अन्दाज़ा इस बात से कीजिए कि सारे ही इनसानों के लिए अल्लाह ने पूछ-गछ, इनाम और सज़ा का जो क़ानून बनाया है, उसकी सारी बुनियाद ही इस गवाही पर है। अल्लाह हिकमतवाला, रहमत और इनसाफ़वाला है, उसकी हिकमत और रहमत तथा उसके इनसाफ़ से यह बात मेल नहीं खाती कि लोगों को उसकी मरज़ी न मालूम हो और वह उन्हें इस बात पर पकड़े कि वे उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ चलें। लोग न जानते हों कि सीधा रास्ता क्या है और वह उनकी गुमराही पर उनकी पकड़ करे, लोग इससे बे-ख़बर हों कि उनसे किस चीज़ के बारे में पूछा जाएगा और वह अनजानी चीज़ के बारे में उनसे पूछताछ करे। इसलिए अल्लाह ने दुनिया की शुरुआत ही एक पैग़म्बर से की और फिर समय-समय पर बहुत-से पैग़म्बर भेजे ताकि वे इनसानों को बताएँ कि तुम्हारे मामले में तुम्हारे पैदा करनेवाले की मरज़ी यह है। तुम्हारे लिए दुनिया में ज़िन्दगी गुज़ारने का सही तरीक़ा यह है। यह ढंग है जिससे तुम अपने मालिक की ख़ुशी हासिल कर सकते हो, ये काम हैं, जो तुमको करने चाहिएँ और ये काम

हैं, जिनसे तुम्हें बचना चाहिए और ये बातें हैं, जिनके बारे में तुमसे पूछताछ होगी। यह शहादत और गवाही जो अल्लाह ने अपने पैग़म्बरों से दिलवाई उसका मक़सद क़ुरआन में साफ़-साफ़ यही बताया गया है कि लोगों को ख़ुदा से यह कहने का मौक़ा बाक़ी न रहे कि हम बे-ख़बर थे और आप हमें उस बात पर पकड़ते हैं, जिसके बारे में हमको ख़बरदार न किया गया था—

"(ये सारे) रसूल ख़ुश-ख़बरी देनेवाले और डरानेवाले (बनाकर भेजे गए) ताकि (इन) रसूलों (के भेजने) के बाद लोगों के पास (अपने बेक़ुसूर होने की) अल्लाह के मुक़ाबले में कोई हुज्जत (तर्क) न रहे। और अल्लाह ज़बरदस्त ताक़तवाला और हिकमतवाला है।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-165)

इस तरह ख़ुदा ने लोगों का यह इलज़ाम ख़त्म करने के लिए यह ज़िम्मेदारी पैग़म्बरों पर डाल दी और वे इस अहम काम की ज़िम्मेदारी पर लगा दिए गए कि अगर वे हक़ की गवाही का हक़ ठीक-ठीक अदा कर दें तो लोग अपने कामों के ख़ुद जवाबदेह होंगे। और अगर उनकी तरफ़ से शहादत (गवाही) की अदाएगी में कोताही हो तो लोगों की गुमराही और राह से भटकने के सिलसिले में पकड़ पैग़म्बरों की होगी। दूसरे लफ़्ज़ों में पैग़म्बरों के मनसब की नज़ाकत यह थी कि या तो वे हक़ की गवाही ठीक-ठीक देकर लोगों का बहाना ख़त्म कर दें, नहीं तो उलटे लोगों का यह इलज़ाम उनपर आएगा कि ख़ुदा ने हक़ का जो इल्म आप लोगों को दिया था वह आपने हम तक न पहुँचाया और ज़िन्दगी गुज़ारने का जो सीधा-सच्चा तरीक़ा उसने आपको बताया था, वह आपने हमें नहीं बताया। यही वजह है कि नबी (अलैहि॰) अपने ऊपर ज़िम्मेदारी के इस बोझ को पूरी तरह महसूस करते थे। और इसी लिए उन्होंने अपनी तरफ़ से हक़ की गवाही देने और लोगों को यह सवाल और एतिराज़ उठाने का मौक़ा न देने की कि हमें दीन नहीं पहुँचाया, जान-तोड़ कोशिशें कीं। फिर नबियों के ज़रिए जिन लोगों ने हक़, इल्म और हिदायत का रास्ता पाया, वे एक उम्मत (समुदाय) बनाए गए। और उसी मनसब की नाज़ुक ज़िम्मेदारी जिसका बोझ नबियों पर डाला गया था, अब इस उम्मत के हिस्से में आई। और नबियों की पैरवी करनेवाली

और उनकी वारिस होने की हैसियत से उसका यह मनसब तय पाया कि अगर वह गवाही का हक़ अदा कर दे और लोग ठीक न हों तो यह इनाम पाएगी और लोग पकड़े जाएँगे। और अगर यह हक़ की गवाही देने में कोताही करे या हक़ के बजाय उलटी बातिल की गवाही देने लगे तो लोगों से पहले यह पकड़ी जाएगी, उससे ख़ुद उसके कामों की पूछ-गछ होगी और उन लोगों के कामों की भी जो उसके सही गवाही न देने की वजह से या ग़लत गवाही देने की वजह से गुमराह, फ़सादी और बुरे होकर रहे।

गवाही देने का तरीक़ा

भाइयो! यह है हक़ की गवाही देने की वह भारी ज़िम्मेदारी जो मुझपर, आपपर और उन सब लोगों पर आती है जो अपना नाता मुस्लिम उम्मत से जोड़ते हैं और जिनके पास ख़ुदा की किताब और उसके नबी (सल्ल॰) की हिदायत पहुँच चुकी है। इस गवाही के देने का तरीक़ा क्या है? गवाहियाँ दो तरह की होती हैं, एक है ज़बान से गवाही और दूसरी अमल से गवाही।

ज़बान से गवाही

पहली गवाही का तरीक़ा यह है कि हम ज़बान और क़लम से दुनिया पर उस हक़ को वाज़ेह करें जो नबी (सल्ल॰) के ज़रिए से हम तक पहुँचा है। समझाने और दिल में उतारने के जितने तरीक़े हो सकते हैं, उन सब से काम लेकर नश्रो-इशाअत (प्रचार-प्रसार) के तमाम मुमकिन ज़रिओं को इस्तेमाल करके साइंस और आर्ट ने जितनी चीज़ें भी ईजाद की हैं उन सब को अपने हाथ में लेकर हम दुनिया को उस दीन की हिदायतों से वाक़िफ़ कराएँ जो दीन ख़ुदा ने इनसान के लिए भेजा है। फ़िक्र और अक़ीदे में, अख़लाक़ और किरदार में, तहज़ीब और सामाजिकता में, रोज़ी कमाने और लेन-देन में, क़ानून और अदालत के इन्तिज़ाम में, सियासत और हुकूमत चलाने में और इनसानों के आपसी मामलों के सभी दूसरे पहलुओं में इस दीन ने इनसान की रहनुमाई के लिए जो कुछ पेश किया है, उसे हम ख़ूब खोल-खोलकर बयान करें, दलीलों और मिसालों से उसका हक़ होना साबित करें और जो कुछ उसके ख़िलाफ़ है, उसपर मुनासिब तबसिरा (समीक्षा) करके बताएँ कि

उसमें क्या ख़राबी है। इस ज़बानी गवाही का हक़ उस समय तक अदा नहीं हो सकता जब तक कि उम्मत इजतिमाई तौर से इनसानों की हिदायत के लिए उसी तरह फ़िक्रमन्द न हो जिस तरह नबी (सल्ल॰) निजी तौर पर इसके लिए फ़िक्रमन्द रहा करते थे। यह हक़ अदा करने के लिए ज़रूरी है कि यह काम हमारी सभी इजतिमाई कोशिशों और क़ौमी जिद्दो-जुहद का केन्द्र-बिन्दु हो। हम अपने दिल और दिमाग़ की सारी ताक़तों और अपने तमाम साधनों को इस काम पर लगा दें। हम अपने सारे कामों में यह मक़सद ज़रूर सामने रखें और अपने बीच से किसी ऐसी आवाज़ के उठने को किसी हाल में सहन ही न करें जो हक़ के ख़िलाफ़ गवाही देनेवाली हो।

अमली गवाही

रही अमली शहादत, तो उसका मतलब यह है कि हम अपनी ज़िन्दगी में उन उसूलों पर अमल करें जिनको हम हक़ कहते हैं। दुनिया सिर्फ़ हमारी ज़बान ही से उनके हक़ होने की बात न सुने, बल्कि खुद अपनी आँखों से हमारी ज़िन्दगी में उनकी ख़ूबियों और बरकतों को देख ले। वह हमारे बरताव में उस मिठास का मज़ा चख ले जो ईमान की चाशनी से इनसान के अख़लाक़ और मामलात में पैदा होती है। वह खुद देख ले कि इस दीन की रहनुमाई में कैसे अच्छे इनसान बनते हैं, कितनी इनसाफ़-पसन्द सोसाइटी तैयार होती है, कितना बेहतरीन समाज बनता है, कितनी साफ़-सुथरी तहज़ीब (संस्कृति) सामने आती है, कितने सही ढंग पर इल्म, आर्ट और अदब (साहित्य) परवान चढ़ता है, कितना इनसाफ़ और हमदर्दीवाला और झगड़े से पाक मआशी तआवुन (आर्थिक सहयोग) सामने आता है और निजी तथा समाजी ज़िन्दगी का हर पहलू किस तरह सुधर जाता है, सँवर जाता है और भलाइयों से मालामाल हो जाता है। इस गवाही का हक़ सिर्फ़ इस तरह अदा हो सकता है कि हम निजी तौर से भी और क़ौमी हैसियत से भी अपने दीन के हक़ होने पर सरापा गवाही बन जाएँ। हमारे लोगों का किरदार इसके हक़ होने का सुबूत बन जाए, हमारे घर इसकी खुशबू से महकें और हमारी दुकानें और हमारे कारख़ाने इसकी रौशनी में जगमगाएँ, हमारे इदारे और हमारे मदरसे इसके नूर से रौशन हों। हमारा लिट्रेचर और

हमारे अख़बार-रिसाले इसकी ख़ूबियों की सनद पेश करें। हमारी क़ौमी पॉलिसी और इज़तिमाई कोशिशें इसके हक़ होने का खुला सबूत हों। ग़रज़ यह कि हमसे जहाँ और जिस हैसियत में भी किसी शख़्स या क़ौम को वास्ता पेश आए, वे हमारे निजी और क़ौमी कैरेक्टर में इस बात का सुबूत पा ले कि जिन बातों को हम हक़ कहते हैं वे हक़ीक़त में हक़ हैं और उनसे हक़ीक़ी शक्ल में इनसानी ज़िन्दगी में अच्छे-से-अच्छा सुधार पैदा हो जाता है। हक़ की यह गवाही जब क़ौली शहादत (मौखिक गवाही) के साथ मिल जाए तब वह ज़िम्मेदारी पूरी तरह अदा हो जाती है जो मुस्लिम उम्मत पर डाली गई है, तभी इनसान यह इलज़ाम न दे सकेंगे कि हम तक हक़ नहीं पहुँचा, और तभी हमारी उम्मत इस क़ाबिल हो सकती है कि आख़िरत की अदालत में नबी (सल्ल॰) के बाद खड़ी होकर गवाही दे सके कि जो कुछ पैग़म्बर (सल्ल॰) ने हम को पहुँचाया था, वह हमने लोगों तक पहुँचा दिया और इसपर भी जो लोग राहे-हक़ पर न आए वे अपनी गुमराही के ख़ुद ज़िम्मेदार हैं।

ज़बान से गवाही और हमारी हालत

प्यारे भाइयो! यह तो वह गवाही है जो मुसलमान होने की हैसियत से हमें अपनी ज़बान और अमल से देनी चाहिए थी, मगर अब देखिए कि आज हम वास्तव में क्या गवाही दे रहे हैं। पहले ज़बानी गवाही का जाइज़ा लीजिए। हमारे अन्दर एक बहुत ही छोटा गरोह ऐसा है जो कहीं निजी तौर पर और कहीं इजतिमाई तौर पर ज़बान और क़लम से इस्लाम की गवाही देता है और उसमें भी ऐसे लोग शायद उँगलियों पर गिने जा सकते हैं, जो इस गवाही को उस तरह अदा कर रहे हों जैसा उसके अदा करने का हक़ है। इन मुट्ठी-भर लोगों को अगर आप अलग कर लें तो आप देखेंगे कि मुसलमानों की आम गवाही इस्लाम के हक़ में नहीं, बल्कि उसके ख़िलाफ़ जा रही है। हमारे ज़मींदार गवाही दे रहे हैं कि इस्लाम में विरासत का क़ानून ग़लत है और जाहिलियत के रिवाज सही हैं। हमारे वकील और जज गवाही दे रहे हैं कि इस्लाम के सारे क़ानून ग़लत हैं, बल्कि इस्लामी क़ानून का बुनियादी नुक़्ता-ए-नज़र ही क़ाबिले-क़बूल नहीं और सही सिर्फ़ वे क़ानून हैं जो इनसानों ने बनाए हैं। हमारे उस्ताद, प्रोफ़ेसर और तालीमी इदारे गवाही

दे रहे हैं कि फ़लसफ़े और हिकमत (दर्शन और तर्कशास्त्र), इतिहास और समाजशास्त्र, मईशत (अर्थशास्त्र), राजनीति और क़ानून और अख़लाक़ के बारे में वही विचार और ख़यालात सही हैं जो मग़रिबी देशों की मुलहिदाना तालीम (नास्तिकतापूर्ण शिक्षा) से लिए गए हैं। और इन बातों में इस्लाम का नज़रिया ध्यान देने लायक़ तक नहीं है। हमारे अदीब (साहित्यकार) गवाही दे रहे हैं कि उनके पास भी अदब का वही सन्देश है जो इंग्लैंड, फ़्रांस और रूस के नास्तिक अदीबों के पास है और मुसलमान होने की हैसियत से उनके अदब की कोई मुस्तक़िल (स्थाई) रूह नहीं है। हमारे प्रेस गवाही दे रहे हैं कि उनके पास भी बहसों, समस्याओं और प्रोपगेन्डों के वही ढंग हैं जो ग़ैर-मुस्लिमों के पास हैं। हमारे व्यापारी, उद्योगपति और कारख़ानेदार गवाही दे रहे हैं कि इस्लाम ने लेन-देन की जो हदें क़ायम की हैं, वे अमल के क़ाबिल नहीं हैं और कारोबार सिर्फ़ उन्हीं तरीक़ों पर हो सकता है जिनको ग़ैर-मुस्लिम अपनाए हुए हैं। हमारे लीडर गवाही दे रहे हैं कि उनके पास भी क़ौमियत और वतनियत के वही नारे हैं, वही क़ौमी माँगें हैं, क़ौमी समस्याओं को हल करने के वही ढंग हैं, राजनीति और दस्तूर के वही उसूल हैं, जो ग़ैर-मुस्लिमों के पास हैं और इस्लाम ने इस बारे में कोई रहनुमाई नहीं की है। हमारी जनता गवाही दे रही है कि उनके पास ज़बान का कोई इस्तेमाल दुनिया और उसके मामलों के अलावा नहीं है और वे कोई ऐसा दीन रखते ही नहीं हैं जिसकी वे अपनी ज़बान से चर्चा करें या जिसकी बातों में वे अपना कुछ समय लगा सकें। यह है वह ज़बान की गवाही जो इजतिमाई तौर से हमारी पूरी उम्मत सारी दुनिया में दे रही है।

अमली गवाही और हमारी हालत

अब अमली गवाही (व्यावहारिक गवाही) की तरफ़ आइए, इसका हाल ज़बान की गवाही से भी बुरा है। बेशक कहीं-कहीं कुछ नेक लोग हमारे बीच ऐसे पाए जाते हैं जो अपनी ज़िन्दगी में इस्लाम की नुमाइन्दगी कर रहे हैं, लेकिन अक्सरियत का हाल क्या है? व्यक्तिगत और निजी हैसियत से आज मुसलमान अपने अमल से इस्लाम की जो नुमाइन्दगी कर रहे हैं, वह यह है कि इस्लाम की छत्र-छाया में पलनेवाले लोग किसी हैसियत से भी कुफ़्र के

तैयार किए हुए लोगों से अच्छे या अलग नहीं हैं, बल्कि बहुत-सी हैसियतों से उनके मुक़ाबले में पीछे हैं। वे झूठ बोल सकते हैं, वे ख़ियानत कर सकते हैं, वे ज़ुल्म कर सकते हैं, वे धोखा दे सकते हैं, वे वादाख़िलाफ़ी कर सकते हैं, वे चोरी कर सकते हैं, डाके डाल सकते हैं, वे दंगा और फ़साद कर सकते हैं, वे बेग़ैरती और बेशर्मी के सारे काम कर सकते हैं और इन सब बुराइयों में उनका औसत किसी ग़ैर-मुस्लिम क़ौम से कम नहीं है। फिर हमारा समाज, हमारा रहन-सहन, हमारे रस्म-रिवाज और हमारे त्यौहार, हमारे मेले और उर्स, हमारे जलसे और जुलूस, ग़रज़ यह कि हमारी इजतिमाई ज़िन्दगी का कोई पहलू ऐसा नहीं है जिसमें हम इस्लाम की किसी हद तक भी सही नुमाइन्दगी करते हों। यह चीज़ मानो इस बात का ज़िन्दा सुबूत है कि इस्लाम को माननेवाले ख़ुद ही अपने लिए इस्लाम के मुक़ाबले नाहक़ को ज़्यादा पसन्द करते हैं। हम मदरसे बनाते हैं तो इल्म, निज़ामे-तालीम और तालीम की रूह सब कुछ ग़ैर-मुस्लिमों से लेते हैं। हम अंजुमनें बनाते हैं तो मक़सद, निज़ाम और काम करने के तरीक़े सब कुछ वही रखते हैं, जो ग़ैर-मुस्लिमों की किसी अंजुमन के हो सकते हैं। हमारी पूरी क़ौम इजतिमाई तौर पर कोई जिद्दो-जुहद करने उठती है, तो उसकी माँगें, उसकी कोशिशों का तरीक़ा, उसकी जमाअत का दस्तूर और उसका निज़ाम, उसकी तजवीज़ें और राएँ, तक़रीरें और बयानात सब कुछ हू-ब-हू ग़ैर-मुस्लिम क़ौमों की कोशिशों की नक़ल होती है। हद यह है कि जहाँ हमारी आज़ाद या नीमआज़ाद हुकूमतें मौजूद हैं, वहाँ भी हमने हुकूमत की बुनियाद, हुकूमत का निज़ाम और क़ानून उन्हीं लोगों से लिया है, जो इस्लाम में यक़ीन नहीं रखते। इस्लाम का क़ानून कुछ हुकूमतों में सिर्फ़ पर्सनल लॉ की हद तक रह गया है और कुछ ने इसको भी बदले बिना नहीं छोड़ा है। हाल में एक अंग्रेज़ लारेंस ब्राउन (Lawrence Brown) ने अपनी किताब 'दि प्रास्पेक्टस् ऑफ़ इस्लाम' (The Prospects of Islam) में ताना दिया है कि हमने जब भारत में इस्लाम के दीवानी और फ़ौजदारी क़ानूनों को दक़ियानूसी और नाक़ाबिले-अमल समझकर रद्द किया था और मुसलमानों के लिए सिर्फ़ उनके पर्सनल लॉ को रहने दिया था तो मुसलमानों को यह सख़्त नापसन्द हुआ था। क्योंकि इस तरह उनकी

पोज़ीशन वही हुई जाती थी, जो कभी इस्लाम की हुकूमत में ज़िम्मियों की थी। अब सिर्फ़ यही नहीं कि भारत के मुसलमानों ने उसे पसन्द कर लिया है, बल्कि ख़ुद मुस्लिम हुकूमतों ने भी इस मामले में हमारी पैरवी की है। टर्की और अलबानिया ने तो इससे आगे बढ़कर निकाह, तलाक़ और विरासत के क़ानून तक में भी हमारे मेआर और मापदण्ड के मुताबिक़ 'सुधार' कर दिया है, अब यह बात खुल गई है कि मुसलमानों का यह अक़ीदा कि क़ानून का स्रोत ईश्वरीय इच्छा है, एक पाक कहानी (Pious Fiction) से ज़्यादा कुछ न था। ...यह है वह अमली गवाही जो सारी दुनिया के मुसलमान तक़रीबन मुत्तहिद होकर इस्लाम के ख़िलाफ़ दे रहे हैं। हम ज़बान से चाहे कुछ कहें, मगर हमारा इजतिमाई अमल गवाही दे रहा है कि इस दीन का कोई तरीक़ा हमें पसन्द नहीं और इसके किसी क़ानून में हम अपनी कामयाबी और नजात नहीं देखते।

झूठ की गवाही देने का बुरा अंजाम

जिस तरह हम सच्चाई को छिपा रहे हैं और झूठ की गवाही दे रहे हैं उसका अंजाम भी हमें वही देखना पड़ रहा है, जो ऐसे ज़बरदस्त जुर्म के लिए ख़ुदाई क़ानून में रखा गया है। जब कोई क़ौम ख़ुदा की नेमत को ठुकराती है और अपने ख़ालिक़ से ग़द्दारी करती है तो ख़ुदा उसको दुनिया में भी अज़ाब देता है और आख़िरत में भी। यहूदियों के बारे में ख़ुदा का यह उसूल (सुन्नत) पूरा हो चुका है और अब हम मुजरिमों के कठघरे में खड़े हैं। ख़ुदा को यहूदियों से कोई निजी दुश्मनी न थी कि वह सिर्फ़ उन्हीं को इस जुर्म की सज़ा देता। और हमारे साथ उसकी कोई रिश्तेदारी नहीं है कि हम वही जुर्म करें और सज़ा से बच जाएँ। हक़ीक़त यह है कि हम हक़ की गवाही देने में जितनी-जितनी कोताही करते गए हैं और झूठ की गवाही देने में हमारा क़दम जिस रफ़्तार से आगे बढ़ा है, ठीक उसी रफ़्तार से हम गिरते चले गए हैं। पिछली एक ही सदी के अन्दर मराकश से लेकर पूर्वी भारत तक देश-के-देश हमारे हाथ से निकल गए, मुसलमान क़ौमें एक-एक करके पराजित और ग़ुलाम होती चली गईं। मुसलमान का नाम कोई गर्व और इज़्ज़त का नाम न रहा। बल्कि अपमान, दरिद्रता और पिछड़ेपन का निशान

बन गया। दुनिया में हमारी कोई आबरू बाक़ी न रही, कहीं हमारा क़त्ले आम हुआ, कहीं हम घर से बेघर किए गए, कहीं हमें बुरे अज़ाब का मज़ा चखाया गया और कहीं हमें सेवा और चाकरी के लिए ज़िन्दा रखा गया। जहाँ मुसलमानों की अपनी हुकूमतें बाक़ी रह गईं, वहाँ भी उनकी हार-पर-हार हुई और आज उनका हाल यह है कि वे विदेशी ताक़तों के डर से काँप रहे हैं। हालाँकि अगर वे इस्लाम की ज़बान और अमल से गवाही देनेवाले होते तो असत्य के अलमबरदार ख़ुद उनके डर से काँप रहे होते। दूर क्यों जाइए ख़ुद हिन्दुस्तान में अपनी हालत देख लीजिए। हक़ की गवाही देने में जो कोताही आपने की, बल्कि उल्टी हक़ के ख़िलाफ़ गवाही जो आप अपनी ज़बान और अमल से देते रहे, उसी का तो नतीजा यह है कि देश-का-देश आपके हाथ से निकल गया। पहले मराठों और सिखों के ज़रिए आप रौंदे गए, फिर अंग्रेज़ की ग़ुलामी आपके हिस्से में आई और अब पिछली तमाम दुर्दशा से बढ़कर दुर्दशा आपके सामने आ रही है। आज आपके सामने सबसे बड़ा सवाल बहुसंख्यक (अक्सरियत) और अल्पसंख्यक (अक़ल्लियत) का है और आप इस अन्देशे से काँप रहे हैं कि कहीं ग़ैर-मुस्लिम अक्सरियत आपको अपना ग़ुलाम न बना ले और आप वह अंजाम न देखें जो दलित क़ौमें देख चुकी हैं। मगर ख़ुदा के लिए मुझे बताइए कि अगर आप इस्लाम के सच्चे गवाह होते तो क्या यहाँ कोई ऐसी अक्सरियत हो सकती थी जिससे आपको कोई ख़तरा होता? या आज भी अगर आप ज़बान और अमल से इस्लाम की गवाही देनेवाले बन जाएँ तो क्या यह अक़ल्लियत और अक्सरियत का सवाल कुछ साल के अन्दर ही ख़त्म न हो जाएगा?

अरब में एक प्रति लाख की अक़ल्लियत को निहायत मुतास्सिर, अत्यन्त पक्षपाती और सख़्त ज़ालिम अक्सरियत ने दुनिया से हमेशा के लिए ख़त्म कर देने की ठानी थी। किन्तु इस्लाम की सच्ची गवाही ने दस साल के अन्दर उसी अक़ल्लियत को सौ फ़ीसदी अक्सरियत में बदलकर रख दिया। फिर जब ये इस्लाम के गवाह अरब से बाहर निकले तो पच्चीस साल के अन्दर तुर्किस्तान से लेकर मराकश तक क़ौमें-की-क़ौमें उनकी गवाही पर ईमान लाती चली गईं और जहाँ सौ फ़ीसदी मजूसी (अग्निपूजक), मूर्तिपूजक और

ईसाई रहते थे, वहाँ सौ फ़ीसदी मुसलमान बसने लगे। कोई हठधर्मी, कोई पक्षपात और कोई धार्मिक तंगनज़री इतनी सख़्त साबित न हुई कि हक़ की ज़िन्दा और सच्ची गवाही के आगे क़दम जमा सकती। अब अगर आप रौंदे जा रहे हैं और अपने-आपको इससे भी बढ़कर पीसे जाने के ख़तरे में मुब्तला (ग्रस्त) पाते हैं तो यह सत्य को छिपाने और झूठ की गवाही देने की सज़ा के सिवा और क्या है?

यह तो इस जुर्म की वह सज़ा है जो आपको दुनिया में मिल रही है। आख़िरत में इससे भी ज़्यादा सख़्त सज़ा का अन्देशा है। जब तक आप हक़ के गवाह होने की हैसियत से अपना फ़र्ज़ नहीं निभाते, उस वक़्त तक दुनिया में जो गुमराही भी फैलेगी, जो ज़ुल्म, फ़साद और अत्याचार भी पैदा होंगे, जो बुराइयाँ और बदकिरदारी भी पले-बढ़ेगी, उनके जवाबदेह आप भी होंगे। आप अगर इन बुराइयों के पैदा करने के ज़िम्मेदार नहीं हैं तो इनके पैदा होने के असबाब और साधनों को बाक़ी रखने और इन्हें फैलने देने के ज़िम्मेदार ज़रूर हैं।

हमारी मंसबी ज़िम्मेदारी

भाइयो! जो कुछ मैंने अर्ज़ किया है उससे आपको मालूम हो गया होगा कि मुसलमान होने की हैसियत से हमें करना क्या चाहिए था और हम कर क्या रहे हैं। और यह कि जो कुछ हम कर रहे हैं उसका नतीजा क्या भोग रहे हैं। इस पहलू से अगर आप मामले की हक़ीक़त पर निगाह डालेंगे तो यह बात ख़ुद ही आपपर खुल जाएगी कि मुसलमानों ने हिन्दुस्तान में और दुनिया के दूसरे देशों में जिन मसाइल और समस्याओं को अपनी क़ौमी ज़िन्दगी की अस्ल समस्याएँ समझ रखा है और जिन्हें हल करने के लिए वह कुछ अपने दिमाग़ से बनाए हुए और अधिकतर दूसरों से सीखे हुए उपायों पर अपना एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रहे हैं, हक़ीक़त में उनमें से कोई भी उनकी अस्ल समस्या नहीं है। और उसके हल के उपाय और तदबीर में वक़्त, क़ुव्वत और माल का यह सारा ख़र्च सिर्फ़ नुक़सान ही है। ये सवाल कि कोई अक़ल्लियत एक भारी अक्सरियत के बीच रहते हुए अपने वुजूद,

हित (मफ़ाद) और अधिकारों को कैसे महफ़ूज़ रखे, और कोई अक्सरियत अपनी हदों में वह ताक़त कैसे हासिल करे जो अक्सरियत में होने की वजह से मिलनी चाहिए, और एक महकूम (पराधीन) क़ौम किसी ग़ालिब क़ौम के तसल्लुत (चंगुल) से किस तरह आज़ाद हो और एक कमज़ोर क़ौम किसी ताक़तवर क़ौम के हाथों बरबाद होने से अपने-आपको किस तरह बचाए और दलित और पिछड़ा गरोह वह तरक़्क़ी, खुशहाली और ताक़त कैसे हासिल करे जो दुनिया की ताक़तवर क़ौमों को हासिल है? ये और ऐसी ही दूसरी समस्याएँ ग़ैर-मुस्लिमों के लिए तो अहम हैं और ऐसी समस्या ज़रूर हो सकती हैं, जिन्हें तरजीह (प्राथमिकता) हासिल हो और उनकी सारी कोशिशों का केन्द्र-बिन्दु भी बन सकती हैं, लेकिन हम मुसलमानों के लिए ये बजाय खुद स्थाई समस्याएँ नहीं हैं, बल्कि सिर्फ़ उस ग़फ़लत का नतीजा हैं जो हम अपने अस्ल काम से बरतते रहे हैं और आज तक बरते जा रहे हैं। अगर हमने वह काम किया होता तो आज इतनी बहुत-सी जटिल और परेशान करनेवाली समस्याओं का यह जंगल हमारे लिए पैदा ही न होता, और अगर अब भी हम इस जंगल को काटने में अपनी ताक़त लगाने के बजाय इस काम पर अपना सारा ध्यान लगा दें और इसी काम में तन-मन-धन से लग जाएँ तो देखते-देखते न सिर्फ़ हमारे लिए बल्कि सारी दुनिया के लिए परेशान कर देनेवाली समस्याओं का यह जंगल खुद ही साफ़ हो जाए, क्योंकि दुनिया की सफ़ाई और सुधार के ज़िम्मेदार हम थे। हमने अपना फ़र्ज़ पूरा करना छोड़ा तो दुनिया काँटों भरे जंगलों से भर गई और उसका सबसे ज़्यादा काँटों भरा हिस्सा हमारे नसीब में लिखा गया।

अस्ल मसला

अफ़सोस है कि मुसलमानों के मज़हबी पेशवा और सियासी रहनुमा इस मामले को समझने की कोशिश नहीं करते और हर जगह उन्हें यही यक़ीन दिलाया जा रहा है कि तुम्हारी अस्ल समस्याएँ और मसाइल वही अक़ल्लियत और अक्सरियत, देश की आज़ादी और क़ौम की हिफ़ाज़त और माद्दी तथा भौतिक तरक़्क़ी के मसाइल हैं। और फिर ये लोग इन मसलों के हल के

उपाय भी मुसलमानों को वही कुछ बता रहे हैं जो उन्होंने ग़ैर-मुस्लिमों से सीखे हैं। लेकिन मैं जितना ख़ुदा की ज़ात पर यक़ीन रखता हूँ, उतना ही इस बात पर भी यक़ीन है कि यह आपकी बिलकुल ग़लत रहनुमाई की जा रही है और इन रास्तों पर चलकर आप कभी भी अपनी कामयाबी की मंज़िल को न पहुँच सकेंगे। मैं आपका बड़ा बदख़ाह हूँगा अगर हर लाग-लपेट से हटकर आपको साफ़-साफ़ न बता दूँ कि आपकी ज़िन्दगी का अस्ल मसला क्या है। मेरे ख़याल में आपका वर्तमान और भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि आप उस हिदायत के साथ क्या मामला करते हैं, जो आप तक ख़ुदा के रसूल (सल्ल॰) के ज़रिए से पहुँची है, जिसके ताल्लुक़ से आपको मुसलमान कहा जाता है और जिसके ताल्लुक़ से आप चाहें या न चाहें दुनिया में इस्लाम के नुमाइन्दे माने जाते हैं। अगर आप इस हिदायत की सही पैरवी करें और अपनी ज़बान और अमल से उसकी सच्ची गवाही दें और आपके इजतिमाई किरदार में पूरे इस्लाम की ठीक-ठीक नुमाइन्दगी होने लगे तो आप दुनिया में सरबुलन्द और आख़िरत में कामयाब होकर रहेंगे। और ख़ौफ़, ग़म और ज़िल्लत, ग़रीबी, गुलामी और अधीनता के ये काले बादल जो आपपर छाए हुए हैं, कुछ ही सालों के अन्दर छट जाएँगे। हक़ की तरफ़ आपकी दावत और आपका नेक किरदार दिलों और दिमाग़ों को मोहित करता चला जाएगा। आपकी साख दुनिया पर बैठती चली जाएगी। इनसाफ़ की उम्मीदें आपसे की जाएँगी। भरोसा आपकी अमानत और इनसाफ़ पर किया जाएगा। सनद आपकी बात की लाई जाएगी। भलाई की उम्मीदें आपसे बाँधी जाएँगी। कुफ़्र के अलमबरदारों की कोई साख आपके मुक़ाबले में बाक़ी न रह जाएगी। उनके सारे फ़लसफ़े और राजनीतिक और मआशी (आर्थिक) नज़रिए आपकी सच्चाई और हक़पसन्दी के मुक़ाबले में झूठे दिखावे साबित होकर रहेंगे। और वे ताक़तें जो आज उनके कैम्प में दिखाई दे रही हैं, टूट-टूटकर इस्लाम के कैम्प में आती चली जाएँगी। यहाँ तक कि एक वक़्त वह आएगा जब कम्यूनिज़्म ख़ुद मास्को में अपने बचाव के लिए परेशान होगा, सरमायादाराना (पूँजीवादी) डेमोक्रेसी ख़ुद वाशिंगटन और न्यूयार्क में अपनी हिफ़ाज़त के लिए बेचैन दिखाई देगी। माद्दापरस्ताना

इलहाद (भौतिकवादी नास्तिकता) ख़ुद लन्दन और पैरिस की यूनिवर्सिटियों में जगह पाने में असमर्थ होगा। नस्लपरस्ती और क़ौमपरस्ती ख़ुद ब्राह्मणों और जर्मनों में अपने पैरौ न पा सकेगी और यह आज का दौर केवल इतिहास में एक शिक्षाप्रद कहानी के रूप में बाक़ी रह जाएगा कि इस्लाम जैसी आलमगीर, विश्वव्यापी और विश्वविजयी ताक़त के नामलेवा कभी इतने बेवक़ूफ़ हो गए थे कि मूसा की लाठी बग़ल में थी और लाठियों और रस्सियों को देख-देखकर काँप रहे थे। यह मुस्तक़बिल तो आपका उस वक़्त होगा, जबकि आप इस्लाम के सच्चे पैरौ और सच्चे गवाह हों। लेकिन इसके बरख़िलाफ़ आपका रवैया यह रहा है कि ख़ुदा की भेजी हुई हिदायत पर साँप बन बैठे हैं, न ख़ुद उससे फ़ायदा उठाते हैं, न दूसरों को उसका फ़ायदा पहुँचने देते हैं।

अपने-आपको मुसलमान कहकर नुमाइन्दे तो इस्लाम के बने हुए हैं, लेकिन अपनी इजतिमाई कथनी और करनी से गवाही ज़्यादातर जाहिलियत, शिर्क, दुनियापरस्ती और अख़लाक़ी बिगाड़ की दे रहे हैं। ख़ुदा की किताब ताक़ पर रखी है और रहनुमाई के लिए हर कुफ़्र और बातिल के हर रहनुमा और गुमराही के हर एक स्रोत से नाता जोड़ा जा रहा है। दावा ख़ुदा की बन्दगी का है और बन्दगी ग़ैरुल्लाह की, की जा रही है। दोस्ती और दुश्मनी हर एक निजी फ़ायदे को सामने रखकर की जाती है और फ़रीक़ दोनों सूरतों में इस्लाम को बनाया जा रहा है। और इस तरह अपनी ज़िन्दगी को भी इस्लाम की बरकतों से महरूम कर रखा है और दुनिया को भी इस तरफ़ आकृष्ट करने के बजाय उलटा दूर कर रहे हैं। तो इस सूरत में न आपकी दुनिया ही सँवर सकती है और न आख़िरत। इसका नतीजा तो ख़ुदा के नियमानुसार वही कुछ है जो आप देख रहे हैं और नामुमकिन नहीं कि भविष्य इस वर्तमान से भी बुरा हो। इस्लाम का लेबल उतारकर खुल्लमखुल्ला कुफ़्र को अपना लीजिए तो कम-से-कम आपकी दुनिया तो वैसी ही बन जाएगी जैसी अमेरिका, रूस और इंग्लैंड की बनी हुई है, लेकिन मुसलमान होकर न मुसलमान बने रहना और ख़ुदा के दीन की झूठी नुमाइन्दगी करके

दुनिया के लिए भी हिदायत का रास्ता बन्द कर देना ऐसा जुर्म है जो आपको दुनिया में भी न पनपने देगा। इस जुर्म की सज़ा जो क़ुरआन में लिखी हुई है और जिसका ज़िन्दा सुबूत यहूदी क़ौम आपके सामने मौजूद है, उसको आप टाल नहीं सकते। चाहे आप संयुक्त राष्ट्रीयता (मुत्तहिदा क़ौमियत) की दो बुराइयों में से हल्की बुराइयों को अपनाएँ या अपनी अलग क़ौमियत मनवाकर वह सब कुछ हासिल करें जो मुस्लिम क़ौमियत हासिल करना चाहती है। इसके टलने की सूरत सिर्फ़ यही है कि इस जुर्म को छोड़ दीजिए।

हमारा मक़सद

अब मैं मुख़्तसर तौर से आपको बताऊँगा कि हम किस मक़सद के लिए उठे हैं। हम उन सब लोगों को जो इस्लाम को अपना दीन मानते हैं, यह दावत देते हैं कि वे इस दीन को हक़ीक़त में अपना दीन बनाएँ, उसको ज़ाती तौर पर अपनी ज़िन्दगियों में और इजतिमाई (सामूहिक) तौर पर अपने घरों में, अपने परिवार में, अपनी सोसाइटी में, अपनी तालीमगाहों में, अपने अदब और सहाफ़त में, अपने कारोबार और आर्थिक मामलों में, अपनी अंजुमनों और क़ौमी इदारों में और सामूहिक रूप से अपनी क़ौमी पॉलिसी में अमली तौर पर क़ायम करें और अपनी बात और अमल से दुनिया के सामने इसकी सच्ची गवाही दें। और हम उनसे कहते हैं कि मुसलमान होने की हैसियत से दीन को क़ायम करना और हक़ की गवाही देना तुम्हारी ज़िन्दगी का अस्ल मक़सद है, इसलिए तुम्हारी सारी कोशिशों और जिद्दो-जुहद का केन्द्र-बिन्दु इसी चीज़ को होना चाहिए। हर उस बात और काम को छोड़ दो जो इसके ख़िलाफ़ हो, इससे मेल न खाता हो और जिससे इस्लाम की ग़लत नुमाइन्दगी होती हो।

इस्लाम को सामने रखकर अपने पूरे क़ौली और अमली रवैये पर फिर से नज़र डालो और अपनी सारी कोशिशें इस राह में लगा दो कि दीन पूरा-का-पूरा अमली तौर पर क़ायम हो जाए। उसकी गवाही ठीक-ठीक दी जाए और उसकी तरफ़ दुनिया को इस तरह दावत दी जाए कि जिससे उसे यह कहने का मौक़ा बाक़ी न रहे कि हमें सच्चाई की ख़बर न थी।

यह है जमाअते-इस्लामी के क़ायम होने का एक ही मक़सद। इस मक़सद को हासिल करने के लिए जो ढंग हमने अपनाया है, वह यह है कि सबसे पहले हम मुसलमानों को उनका फ़र्ज़ याद दिलाते हैं और उन्हें साफ़-साफ़ बताते हैं कि इस्लाम क्या है, उसके तक़ाज़े क्या हैं, मुसलमान होने का मतलब क्या है और मुसलमान होने के साथ क्या ज़िम्मेदारियाँ आदमी पर आती हैं?

इजतिमाइयत

इस बात को जो लोग समझ लेते हैं, उनको फिर हम यह बताते हैं कि इस्लाम के सारे तक़ाज़े ज़ाती और निजी रूप से पूरे नहीं किए जा सकते। इसके लिए इजतिमाई (सामूहिक) जिद्दो-जुहद ज़रूरी है। दीन का एक बहुत ही थोड़ा हिस्सा व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखता है। उसको तुमने क़ायम कर भी लिया तो न पूरा दीन ही क़ायम होगा और न उसकी गवाही ही हो सकेगी। बल्कि जब इजतिमाई ज़िन्दगी पर कुफ़्र का निज़ाम छाया हो तो खुद अपनी ज़िन्दगी के अधिकतर हिस्सों में भी दीन क़ायम न किया जा सकेगा और इजतिमाई (सामूहिक) निज़ाम की पकड़ दिन-प्रतिदिन इस इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) इस्लाम की हदों को घटाती चली जाएगी। इसलिए पूरे दीन को क़ायम करने के लिए और उसकी ठीक-ठीक गवाही देने के लिए बेहद ज़रूरी है कि सारे ऐसे लोग जो मुसलमान होने की ज़िम्मेदारियों का शुऊर और उन्हें अदा करने का इरादा रखते हैं, मुत्तहिद (एक) हो जाएँ और मुनज़्ज़म तरीक़े से दीन को अमली तौर पर क़ायम करने और दुनिया को उसकी तरफ़ बुलाने की कोशिश करें और उन रुकावटों को रास्ते से हटाएँ जो दीन क़ायम करने और दीन की दावत देने में आड़े आएँ। यही वजह है कि दीन में जमाअत या संगठन को लाज़िमी बताया गया है और दीन को क़ायम करने और दीन की तरफ़ बुलाने की कोशिशों के लिए क्रम और तरतीब यही रखी गई है कि पहले एक जमाअत (संगठन) हो फिर ख़ुदा की राह में कोशिश और जिद्दो-जुहद की जाए और यही वजह है कि जमाअत के बिना ज़िन्दगी को जाहिलियत और अज्ञान की ज़िन्दगी, और जमाअत

से अलग होकर रहने को इस्लाम से अलग होने के बराबर बताया गया है।[1]

हमारी दावत

जो लोग इस बात को भी समझ लेते हैं और इसकी समझ से उनके अन्दर मुसलमान होने की ज़िम्मेदारियों का एहसास इस हद तक मज़बूत हो जाता है कि अपने दीन के लिए अपने निजी फ़ायदे और ख़ुद-परस्ती को क़ुरबान करके जमाअत के नज़्म (अनुशासन) की पाबन्दी क़बूल कर लें, उनसे हम कहते हैं कि अब तुम्हारे सामने तीन रास्ते हैं और तुम्हें पूरी आज़ादी है कि इनमें से जिसको चाहो अपना लो। अगर तुम्हारा दिल गवाही दे कि हमारी दावत, अक़ीदा, मक़सद, जमाअत का निज़ाम तथा काम करने का ढंग सबकुछ ख़ालिस इस्लामी है और हम वही काम करने उठे हैं, जो क़ुरआन और हदीस के मुताबिक़ मुस्लिम उम्मत का अस्ल काम है तो हमारे

---

1. इशारा है उस हदीस की तरफ़ जिसमें नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है—
"मैं तुमको पाँच चीज़ों का हुक्म देता हूँ, जिनका हुक्म अल्लाह ने मुझे दिया है। जमाअत, सुनना, कहा मानना, हिजरत और ख़ुदा के रास्ते में जिहाद। जो शख़्स जमाअत से बित्ते-भर भी अलग हुआ उसने इस्लाम का बन्धन अपनी गर्दन से उतार फेंका, यह और बात है कि वह फिर जमाअत की तरफ़ पलट आए, और जिसने जाहिलियत (यानी फूट) की तरफ़ बुलाया वह जहन्नम में जाएगा।"
सहाबा (रज़ि०) ने अर्ज़ किया, "ऐ ख़ुदा के रसूल! चाहे वह रोज़ा रखे और नमाज़ पढ़े?" फ़रमाया, "हाँ, चाहे वह नमाज़ पढ़े और रोज़ा रखे और मुसलमान होने का दावा करे।"
(हदीस : अहमद, हाकिम)

इस हदीस से तीन बातें साबित होती हैं—
(1) दीन का काम करने की सही तरकीब यह है कि पहले जमाअत हो और उसका ऐसा निज़ाम हो कि सब लोग किसी एक की बात सुनें और उसका कहा मानें फिर जैसा भी मौक़ा हो उसके मुताबिक़ हिजरत और जिहाद किया जाए।
(2) जमाअत से अलग होकर रहना मानो इस्लाम से अलग होना है और इसका मतलब यह है कि इनसान उस ज़िन्दगी की तरफ़ वापस जा रहा है, जो इस्लाम से पहले अज्ञान काल में अरबवासियों की थी कि उनमें कोई किसी की सुननेवाला न था।
(3) इस्लाम के ज़्यादा तक़ाज़े और उसके अस्ल मक़सद जमाअत और इजतिमाई (सामूहिक) जिद्दो-जुहद ही से पूरे हो सकते हैं। इसलिए नबी (सल्ल०) ने जमाअत (संगठन) से अलग होनेवाले को उसकी नमाज़, रोज़े और मुसलमान होने के दावे के बावजूद इस्लाम से निकलनेवाला बताया है। इसी बात की व्याख्या है जो हज़रत उमर (रज़ि०) ने अपने इस बयान में की है—
'इस्लाम जमाअत के बग़ैर नहीं है।' (जामिउ-बयानिल-इल्मि लि इब्ने-अब्दिल-बर्र)

साथ आ जाओ। अगर किसी वजह से तुम्हें हमपर इत्मीनान न हो और कोई दूसरी जमाअत तुमको ऐसी नज़र आती हो, जो ख़ालिस इस्लामी मक़सद के लिए इस्लामी ढंग पर काम कर रही हो, तो उसमें शामिल हो जाओ। हम ख़ुद भी ऐसी ज़माअत पाते तो उसमें शामिल हो जाते, क्योंकि हमें डेढ़ ईंट की मस्जिद अलग बनाने का शौक़ नहीं है। और अगर तुमको न हमपर इत्मीनान है न किसी दूसरी जमाअत पर तो फिर तुम्हें अपने इस्लामी फ़र्ज़ को अदा करने के लिए ख़ुद उठना चाहिए और इस्लामी ढंग पर एक ऐसी जमाअत बनानी चाहिए जिसका मक़सद पूरे दीन को क़ायम करना और ज़बान और अमल से उसकी गवाही देना हो। इन तीनों सूरतों में से जो सूरत भी तुम अपनाओगे इन-शाअल्लाह हक़ पर होगे।

हमने कभी यह दावा नहीं किया और जब तक हममें कुछ भी सूझ-बूझ है, हम यह दावा नहीं कर सकते कि सिर्फ़ हमारी ही जमाअत हक़ पर है और जो हमारी जमाअत में नहीं है वह बातिल पर है, हमने कभी लोगों को अपनी जमाअत की तरफ़ दावत नहीं दी है। हमारी दावत तो सिर्फ़ उस फ़र्ज़ की तरफ़ है जो मुसलमान होने की हैसियत से हमपर और आपपर बराबर लागू होता है। अगर आप उसको अदा कर रहे हैं तो हक़ पर हैं, चाहे हमारे साथ मिलकर काम करें या न करें, लेकिन यह बात क़िसी तरह भी ठीक नहीं है कि न आप ख़ुद उठें न क़िसी उठनेवाले का साथ दें और तरह-तरह के बहाने करके दीन क़ायम करने और लोगों के सामने दीन की गवाही देने की ज़िम्मेदारी से जी चुराएँ, या उन कामों में अपनी ताक़तें लगाएँ जिनसे दीन के बजाय कोई दूसरा निज़ाम और व्यवस्था क़ायम होती हो और इस्लाम के बजाय क़िसी और चीज़ की गवाही आपकी बात और आपके बरताव से मिले। मामला दुनिया और उसके लोगों से होता तो बहानों से काम चल जाता, लेकिन यहाँ मामला उस ख़ुदा के साथ है जो दिलों तक की बात जानता है। उसे किसी चालबाज़ी से धोखा नहीं दिया जा सकता।

नई जमाअत बनाना

इसमें शक नहीं कि एक ही मक़सद और एक ही काम के लिए कई एक जमाअतें बनना देखने में ग़लत मालूम होता है और इसमें फूट का भी डर

है, लेकिन जब इस्लामी निज़ाम दरहम-बरहम हो चुका हो और सवाल सिर्फ़ उस निज़ाम के चलाने का नहीं, बल्कि उसको दोबारा क़ायम करने का हो तो यह मुमकिन नहीं है कि शुरू ही में वह जमाअत बन सके जिसमें मुस्लिम उम्मत के सारे ही लोग शामिल हों। जिसकी पाबन्दी हर मुसलमान पर वाजिब हो और जिससे अलग रहना गुमराही और अलग होने को दीन से फिर जाना समझा जाए। काम की शुरुआत में इसके सिवा कोई रास्ता नहीं कि जगह-जगह कई जमाअतें इस मक़सद के लिए बनें और अपने-अपने तौर पर काम करें। ये सब जमाअतें आख़िरकार एक हो जाएँगी, अगर हक़ीक़त में वे निजी मफ़ाद और हर प्रकार के अतिरेक और कमी-बेशी से बचते हुए सच्चे दिल से अस्ल इस्लामी मक़सद के लिए इस्लामी ढंग पर काम करें। हक़ की राह में चलनेवाले ज़्यादा देर तक अलग नहीं रह सकते। हक़ उनको जमा करके ही रहता है, क्योंकि हक़ की फ़ितरत ही ऐसी है कि वह अपने माननेवालों को आपस में जोड़े। एक-दूसरे से मुहब्बत का जज़्बा पैदा करे और उनको आपस में इस तरह मिला दे कि सब एक ही रंग में रंगकर एक हो जाएँ। फूट तो सिर्फ़ इस सूरत में पैदा होती है जब हक़ के साथ कुछ-न-कुछ बातिल की मिलावट हो या बाहर हक़ की नुमाइश हो और अन्दर बातिल काम कर रहा हो।

हमारे काम का तरीक़ा

अब मैं यह भी अर्ज़ कर दूँ कि जो लोग हमारी जमाअत को पसन्द करके उसमें दाख़िल होते हैं, उनसे हम क्या चाहते हैं और उनके लिए हमारे पास काम क्या है। अपने अरकान (सदस्यों) से हमारा मुतालबा बिलकुल वही है जो इस्लाम ने हर मुसलमान से किया है। हम न तो इस्लाम के अस्ल मुतालबे में ज़रा भी कुछ बढ़ाना चाहते हैं और न उसमें कुछ घटाते हैं। हम हर शख़्स के सामने पूरे इस्लाम को बग़ैर कुछ घटाए बढ़ाए पेश कर देते हैं और उससे कहते हैं कि इस दीन को जान-बूझकर पूरे शुऊर के साथ क़बूल करो। इसके तक़ाज़ों को समझकर ठीक-ठीक अदा करो। अपने ख़यालात, अपनी बातों और कामों से हर उस चीज़ को निकाल फेंको जो दीन के आदेशों और उसकी रूह के ख़िलाफ़ हो और अपनी पूरी ज़िन्दगी से 'इस्लाम' की गवाही

दो। बस यही हमारे यहाँ दाख़िले की फ़ीस है और यही हमारी मेम्बरी के नियम हैं। हमारा दस्तूर, हमारा जमाअती निज़ाम और वह चीज़ जिसकी तरफ़ हम बुलाते हैं, सबके सामने नुमायाँ है तथा उसका जाइज़ा लेकर हर आदमी देख सकता है कि हमने अस्ल इस्लाम में—उस इस्लाम में जिसकी बुनियाद क़ुरआन और सुन्नत है—न कुछ घटाया है और न बढ़ाया है। और हम हर वक़्त इस बात के लिए तैयार हैं कि हमारी जिस चीज़ के बारे में भी कोई साबित कर देगा कि वह क़ुरआन और सुन्नत की तालीम के अलावा है, उसे हम अपने यहाँ से निकाल देंगे। और जिस चीज़ के बारे में बता देगा कि वह उस तालीम में है और हमारे यहाँ नहीं है, उसे हम बिना झिझक अपना लेंगे। क्योंकि हम तो उठे ही हैं कि पूरे दीन को बग़ैर कुछ घटाए-बढ़ाए क़ायम करें और उसकी गवाही दें। फिर हमसे बड़ा ज़ालिम कौन होगा, अगर हम अपने इसी मक़सद में मुनाफ़िक़ साबित हों।

इस तरह जो लोग हमारे जमाअती निज़ाम में शामिल होते हैं, उनके लिए हमारे पास सिर्फ़ यह काम है कि वे अपनी कथनी और करनी से इस्लाम की गवाही दें और दीन को पूरे तौर पर क़ायम करने के लिए इजतिमाई कोशिश करें, ताकि लोगों के सामने दीन की गवाही का हक़ पूरी तरह अदा हो सके। जहाँ तक ज़बानी गवाही का ताल्लुक़ है, हम अपने अरकान को ऐसी ट्रेनिंग दे रहे हैं, जिससे वे अपनी-अपनी सलाहियतों के मुताबिक़ ज़बान और क़लम से इस्लाम की ज़्यादा-से-ज़्यादा सही गवाही देने के लिए तैयार हों। और हम ऐसे इदारे भी क़ायम करने की कोशिश कर रहे हैं, जो संगठित तरीक़े से इल्म और अदब के हर मैदान में ज़िन्दगी के तमाम मसलों से मुताल्लिक़ इस्लामी तालीमात की सच्चाई दुनिया के सामने स्पष्ट कर दें। और इस मक़सद के लिए पब्लिसिटी के सभी मुमकिन ज़रिओं और साधनों से काम लें। रही अमली गवाही तो इस सिलसिले में हमारी कोशिश यह है कि पहले तो एक-एक आदमी इस्लाम का ज़िन्दा गवाह हो, फिर उन लोगों से एक ऐसी संगठित सोसाइटी विकसित हो जिसके अन्दर इस्लाम अपनी अस्ल स्पिरिट में काम करता हुआ देखा जा सकता हो।

●●